बिहार की क्षेत्रीय पार्टियाँ एवं उनका गठबंधन

डॉ0 दीपक प्रकाश वर्द्धन*
संजय कुमार सिंह*

भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के समय प्रभावकारी दलों के संगठन की आवश्यकता महसूस हुई। कांग्रेस एक विशेश अस्तित्व वाले संगठन के रूप में पैदा हुई जिसने देश में अंग्रेज विरोधी तत्वों को एकत्रित किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस दल ने एक राजनीतिक दल के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया, यद्यपि महात्मा गाँधी चाहते थे कि यह केवल समाज सेवा संगठन के रूप में कार्य करे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की राजनीति में कांग्रेस दल की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण थी कि भारत का प्रायः एक प्रभुत्वशाली दलीय व्यवस्था के रूप में वर्णन किया गया। कांग्रेस आम जनता का सर्वप्रिय दल था तथा इसके योजना कार्य में सब कुछ सम्मिलित था। प्रायः इसको भारतीय समाज का लघू रूप माना जाता था जिसमें राश्ट्र के समस्त तत्वों का प्रतिबिम्ब था।

परन्तु इससे हमें गलत परिणामों पर नहीं पहुँचना चाहिए। कांग्रेस में ही विभिन्न तत्व विद्यमान थे जो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अलग–अलग विचार रखते थे। कांग्रेस दल जो आन्दोलन दल से एक राजनीतिक दल में बदल गया था, चाहता तो सब विभिन्न तत्वों को अपने विशालतम संगठन में समा सकता था। इसके बाद कांग्रेस दल एक केन्द्रीय दल बन गया जिसमें वामपंथी और दक्षिण पंथी राजनीति साथ–साथ शामिल थी। इसने दल में एक आन्तरिक शोधक रचना का गठन किया जिसमें कांग्रेस की बाहरी परिस्थितियों के अनुसार इनके भिन्न–भिन्न तत्व एक–दूसरे में घुल–मिल सकते थे।

साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय दल :–भारत में अनेक राजनीतिक दल साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय आधार पर गठित है। ऐसे दलों में अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (अन्ना डी.एम. के.) द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डी.एम.के.), अकाली दल, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, मुस्लिम मजलिस, नेशनल कांग्रेस और अन्य दलों का नाम लिया जा सकता है। नागालैण्ड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम प्रदेश और अरूणाचल प्रदेश में तो नागालैण्ड

***शोध निदेशक एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा।**
***इतिहास विभाग वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा**

लोकतांत्रिक दल और मणिपुर पीपुल्स पार्टी आदि ही प्रभावशाली है और अखिल भारतीय दलों का प्रभाव लगभग नगण्य है। यही स्थिति आज बिहार में जनता दल (यू.) और उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी की है। लोकसभा चुनावों में तो ये साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय दल अपनी शक्ति तथा प्रभाव का सीमित परिचय ही दे पाते हैं, लेकिन विधानसभा चूनावों में अपनी शक्ति का परिचय देने में सफल रहते हैं। मई 1980 में सम्पन्न 9 राज्यों की विधानसभाओं के चुनावों में यही बात देखी गयी है और 1982 में आन्ध्र प्रदेश में तेलुगु देशम, तथा कर्नाटक में 'क्रान्तिरंगा' जैसे क्षेत्रीय दलों का अभ्युदय हुआ। इन चुनाव परिणामों को देखकर यह आशंका पैदा हो गयी है कि अन्य विपक्षी तत्व भी क्षेत्रीयता के तंग दायरे की ओर झुकने के लोभ का शिकार न हो जायें। ये राजनीतिक दल पृथकत्व और साम्प्रदायिकता की भावना फैलाकर जातीय, भाशायी और क्षेत्रीय विद्वेश को जन्म देते हैं। अतः लोकतंत्र और भारतीय एकता के हित में इन राजनीतिक दलों की शक्ति में कमी होना आवश्यक है।

राजनीतिक दलों की आन्तरिक गुटबन्दी :–भारत की दल प्रणाली की एक प्रमुख विशेशता विभिन्न दलों की आन्तरिक गुटबन्दी है। लगभग सभी राजनीतिक दलों में छोटे–छोटे गुट पाये जाते है, एक वह गुट जो सत्ता में है और दूसरा असन्तुश्ट गुट। इन गुटों में पारस्परिक मतभेद इस सीमा तक पाया जाता है कि कभी–कभी निर्वाचन में एक गुट के समर्थन प्राप्त उम्मीदवारों को दूसरे गुटों के सदस्य पराजित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। दल में आन्तरिक गुटबन्दी कांग्रेस दल में सबसे ज्यादा पायी जाती है क्योंकि इसमें सत्ता के लिए निरन्तर संघर्श चलता रहा है जिसका प्रभाव सम्पूर्ण दल की प्रगति पर पड़ता है। भारतीय जनता पार्टी, अकाली, दल, डी.एम.के. आदि सभी आन्तरिक रूप से विभाजित रहे हैं। इस प्रकार की गुटबन्दी पश्चिमी देशों के राजनीतिक दलों में नहीं पायी जाती है। शासक दल और अन्य दलों में गुटबन्दी की यह स्थिति भारतीय राजनीति का अभिशाप बनी हुई है।

अवसरवादी गठबंधन की राजनीति :–भारतीय राजनीति का 1990 का दशक कुछ शक्तिशाली राजनीतिक दलों और आंदोलनों के उभार तथा उनके कार्यक्रमों का प्रमाण रहा है। विशेष रूप से ये राजनीतिक दल और उनके आंदोलन दलित तथा पिछड़े वर्ग के समर्थक रहे हैं। ऐसे राजनीतिक दलों में से अनेक ने अपनी क्षेत्रीय आकांक्षाओं का भी व्यापक रूप से प्रकटकीकरण किया। उदाहरण के लिए, 1986 में निर्मित संयुक्त मोर्चे की सरकार में ऐसे दलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1996 का संयुक्त मोर्चा 1989 के राष्ट्रीय मोर्चे जैसा ही था। इस मोर्चे में भी जनता दल के साथ–साथ कई अन्य क्षेत्रीय दल भी सम्मिलित थे। सबसे आश्चर्य तो यह था कि1989 की भांति 1996 में संयुक्त मोर्चे

की सरकार को भारतीय जनता पार्टी का समर्थन प्राप्त नहीं था। भाजपा की जगह कांग्रेस का इसे समर्थन प्राप्त था। इससे स्पष्ट है कि सत्ता की होड़ में राजनीतिक समीकरण कैसे कभी–कभी अपनी सीमाओं को लांघ जाता है। 1989 में भाजपा और वाम मार्चा दोनों ने राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार को इसलिए समर्थन दिया था कि ये दोनों उस समय कांग्रेस को नहीं चाहते थे। बाद के आम चूनावों में भारतीय जनता पार्टी की स्थिति बेहतर होती गई। 1991 तथा 1996 के आम चुनावों में यह सुदृढ़ हो गई। 1996 में भारतीय जनता पार्टी सभी राजनीतिक दलों से आगे निकलकर सबसे बड़ी पार्टी हो गई। यही कारण था कि भारतीय जनता पार्टी को सरकार बनाने का न्योता मिला। चूँकि देश के अधिकांश राजनीतिक दल भारतीय जनता पार्टी की नीतियों के आलोचक थे इसलिए अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा की सरकार लोकसभा में विश्वासमत प्राप्त नहीं कर सकी। बाद में एक गठबंधन, जिसे हम राजग (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) कहते हैं, के अगुआ के रूप में भारतीय जनता पार्टी सत्ता आई थी। मार्च 1998 से अक्टूबर 1999 तक वह केंद्र में सत्ता में रही। यह सर्वविदित है कि 1999 में निर्मित राजग सरकार ने अपना निर्धारित कार्यकाल पूरा किया।

इस प्रकार, 1989 के आम चुनावों से भारत में राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर गठबंधन की राजनीति का प्रारंभ हुआ। इसके बाद केन्द्र में जितनी भी सरकारें बनी, ये सभी या तो अनेक दलों के गठबंधन की सरकारें थी या अन्य दलों की बैसाखी पर टिकी सरकारें थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अन्य दलों के समर्थन पर टिकी सरकारें कमजोर साबित हुई। 1990 के दशक और उसके बाद भी देश में किसी भी सरकार का गठन बिना क्षेत्रीय दलों की साझेदारी के संभव नहीं था। 1989 में निर्मित राष्ट्रीय मोर्चा सरकार, 1996 एवं 1997 की संयुक्त मोर्चा सरकार, 1998 तथा 1999 की राजग सरकार तथा 2004 में बनी सप्रंग सरकार पर यह बात सामान्य रूप से लागू होती है।

लालू प्रसाद का राष्ट्रीय जनता दल :–1989 से 2004 तक बिहार की राजनीति में राश्ट्रीय जनता दल का शासन रहा। बिहार की क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टी के रूप में लालू प्रसाद तथा राबड़ी देवी के मुख्यमंत्रित्व काल में राश्ट्रीय जनता दल सत्तासीन रहा। प्रारंभ में राजद–गठबंधन ने विभिन्न छोटे–छोटे राजनीतिक गुटों को साथ लेकर बिना कोई वैचारिक समानता के भी सत्ता के लिए अवसरवादी राजनीति के तहत अपना शासन राज्य में चलाया। इस गठबंधन की राजनीति का प्रारंभ कांग्रेस विरोध से हुआ था लेकिन बाद के समय में राजनीतिक अवसरवादिता से प्रभावित होकर कांग्रेस के साथ सहयोगी रवैया अपना गया और भाजपा विरोध की राजनीति के तहत अपना वर्चस्व बनाए रखा।

लालू जी के राजनैतिक जीवन का शुरूआत 1966 से ही हो गयी थी। 1973 में वे पटना विश्वविद्यालय छात्रसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वे समाजवादी युवाजन सभा में बड़े सक्रिय थे। कांग्रेसी–संस्कृति के खिलाफ छात्रों को एकजुट करने के अभियान में वे उस समय से ही काफी सक्रिय रहे। लालू जी जब 1977 में सांसद हुए थे, उस समय कुलदीप नैयर युवा सांसदों पर एक 'सिरिज' लिख रहे थे। एक आलेख में उन्होंने लालू जी के राजनैतिक जीवन की संभावनाओं की ओर संकेत किया था। लालूजी के उदय से पाखंडियों और सामंतों की हवेलियों में दरारे आने लगी है। जनसंस्कृति की खोयी हुई चेतना वापस हो गयी है। चरवाहा, पहलवान और विरहा विद्यालय हमारी संस्कृति के ही अंग हैं जिन्हे लालू जी ने फिर से नया जीवन दिया।

आजादी के बाद बिहार के कुछ समाजवादी कांग्रेस से निकल आए थे और अपने–अपने क्षेत्रों में समाजवादी आंदोलन चलाते रहे, किन्तु उनका प्रभाव अपने क्षेत्रों तक ही सिमटा रहा। प्रमुख समाजवादियों में जे.पी., जे.बी.कृपलानी, भूपेन्द्र नारायण मंडल, रामानन्द मिश्र, सूरज नारायण सिंह, रामानन्द तिवारी आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। लालू प्रसाद का राजनीतिक जीवन इन्हीं महापुरूशों से प्रेरित था।

संदर्भ ग्रंथ–सूची :–

1. जैन, पुखराज तथा फड़िया, बाबूलाल (1984), भारतीय शासन और राजनीति, साहित्य भवन, आगरा।
2. कोठारी रजनी, पोलिटिक्स इन इंडिया।
3. जोन्स, मोरीस, दी गवर्नमेंट एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया।
4. रजनी : कोठारी।
5. मीरचंदानी, जी0जी0, दी पीपुल्स भरडिक्ट, विकास, 1980।
6. राय, गाँधीजी, स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति, भारती भवन, 2009।
7. सिंह, अमर कुमार (2004), समाजवादी चेतना के गौरव लालू प्रसाद, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना।
8. सिंह, अमर कुमार (2004), समाजवादी चेतना के गौरव लालू प्रसाद, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना।